



काँग्रेस की राजनैतिक जंग जीतने की तैयारी

परिवारवाद के तीव्र प्रवाह में काँग्रेस लम्बे समय तक बहती रही है। अब जब उसका प्रवाह थम सा गया है, तब सत्ता के हस्तान्तरण का यह प्रयास लगातार पराजय झेलती काँग्रेस पार्टी के कार्यकर्ताओं का मनोबल उठाने की एक कसरत भी हो सकती है। अब इसमें राहुल जी सफल हो पायेंगे या नहीं—इसे देखना होगा। चूँकि पार्टी में उन्हें युवा पीढ़ी के प्रतिनिधि के रूप में देखा जा रहा है तब संभव है कि पुरानी पीढ़ी के उम्र-दराज नेताओं की बिस्तर-लपेट प्रक्रिया भी प्रारंभ हो। वैसे यह पीढ़ी गत बदलाव का तकाजा भी है। अनेक गंभीर चुनौतियाँ भी सामने हैं। कर्नाटक की सत्ता को बचाये रखना, मध्यप्रदेश, राजस्थान और छत्तीसगढ़ के पुराने किलों में नये रंग-रोगन की जरूरत को तलाशना। इसके बाद आगामी लोकसभा चुनावों के लिये कमर कस कर ठीक से खड़े हो जाने की तैयारी करना आदि।

गुजरात के चुनाव ने हिन्दू और जनेऊ वाले हिन्दू के बीच बँटवारा करा दिया। सोमनाथ मंदिर के रजिस्टर गैरहिन्दू विषय उपस्थित करा दिया। काँग्रेस का साम्प्रदायिक कार्ड यहाँ भी कारगर सिद्ध नहीं हो सका। न ही भाजपा को नुकसान पहुँचाया जा सका। भाजपाघोषित तौर पर हिन्दूत्व से लिपटी पार्टी है। उस पर उसके जन्मकाल से लेकर अब तब साम्प्रदायिक होने के आरोप लगाये जाते रहे हैं। पं. नेहरू सहित काँग्रेस नेताओं, वामपंथियों और सेकुलर बिग्रेड ने जाने क्या क्या कहा। काँग्रेसियों ने तो सेक्यूलरिज्म के नाम पर खूब फूट फ़ैलायी और उस फूट का लाभ भी उठाया। अब मंदिर मंदिर जाने के बाद राहुल को बताना पड़ रहा

है कि उनकी दादी और उनका परिवार शिवभक्त है। यही है हैरत की बात। राजनीति के इस चक्रव्यूह में फँसने से बचने की जरूरत थी। अब काँग्रेस के तर्कस से मौके बेमौके निकलने वाला 'सेक्यूलरिज्म' के तीर की धार भी उलट गयी। इसे एक बड़े चमत्कार के रूप में देखा जाना चाहिये। पिछली सरकार के प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने कहा था कि "देश के संसाधनों पर मुस्लिमों का पहला अधिकार है। अब

डॉ. किशन कछवाहा

अचानक ऐसा क्या हो गया कि काँग्रेस के नेता धार्मिक कट्टर हिन्दू की छवि दिखाने उतावले होते जा रहे हैं। इस बदलाव की राजनीति को समझने की जरूरत है? कोई प्रश्न उठा सकता है कि काँग्रेस के संभावित अध्यक्ष गुजरात चुनाव के दौरान 22 मंदिरों में जाकर पूजा अर्चना कर आये लेकिन किसी एक मस्जिद में क्यों नहीं गये? काँग्रेस में आया यह बदलाव आश्चर्य का विषय तो है ही, कि जिस पार्टी ने सन् सैतालीस से अब तक अपना राजनैतिक रास्ता बदला नहीं था। असल मुश्किल तो उन समर्थकों और हितैषियों के सामने आ खड़ी हुयी है जो अब तक देशभर में हिन्दूत्व, उसकी जीवन शैली, प्रथाओं, परम्पराओं के खिलाफ चीखा, चिल्लाया करते थे। हिन्दुत्व को विरुप-विन्दप करने के प्रयासों में लगे उन तथा कथित बुद्धिजीवियों अंतरराष्ट्रीय पुरस्कार विजेता, वामपंथी आधुनिकतावादी लोगों पर क्या बीत रही होगी? दूसरी तरफ कपिल सिब्बल और मणिशंकर अय्यर जैसे के बयानों से पूरी मेहनत पर पानी फिर गया। सत्य कडुआ होता है। सिंहावलोकन करें, अतीत को टटोलें तो पता चलता है किगत

66-67 वर्षों में काँग्रेस का नेतृत्व सोच के आधार पर और नीतियों के आधार पर कमजोर ही रहा है। सन् 47 में देश को आजादी मिली थी। इसमें सभी वर्ग के लोग शामिल थे लेकिन काँग्रेस ने अकेले ही उसका श्रेय लेने का प्रयास किया। श्रेय लिया तो ठीक लेकिन देश के दुर्भाग्यपूर्ण बँटवारे के पाप को, किसके सिर पर थोपा जाय? महात्मा गाँधी स्वयं बँटवारे के विरोधी थे। सन् 47 में ही पाकिस्तान ने कश्मीर पर

हमला कर दिया था उस समय भारतीय सेनायें पाकिस्तानी सैनिकों को खदेड़ रही थी, तब अचानक युद्ध विराम का निर्णय क्यों लिया गया? जिसके कारण आज भी आधे से अधिक कश्मीर का भू-भाग पाकिस्तान के कब्जे में बना हुआ है। सन् 62 में चीनी-भारत भाई-भाई का नारा कौन लगवा रहा था? तभी चीन ने भारत पर हमला कर दिया—क्या ये सब आत्मसम्मान पर चोट पहुँचाने वाले विषय नहीं हैं? मजबूती तो उस समय भी देश की सरकार चलाने वालों में नहीं दिखी। सरकार जैसे जैसे चल रही थी जोड़-तोड़ की तारीफ कर भले ही गलत फहमी पाल ली जा सकती है। उस पाठ को अब भी दुहराने का प्रयास किया जा सकता है। मजबूती आयेगी कहाँ से?

इसे भी याद रखना चाहिये कि धर्म के मर्म की यदि सही समझ न हो तो एक ही धर्म के लोगों में होने वाले भयानक युद्धों का लम्बा और दुःखद इतिहास रहा है। महाभारत के युद्ध में दोनों पक्ष के योद्धा हिन्दूधर्म को मानने वाले थे वे एक परिवार से भी सम्बंधित रहे हैं। प्रथम और द्वितीय विश्वयुद्ध में भी दोनो पक्षों के लोग ईसाई

थे। ऐसे अनेक उदाहरण हैं। आध्यात्म भारत की आत्मा है। इस तथ्य को नजर अन्दाज किया जाना ही एक बहुत बड़ी गलती रही है। 1800 सौ साल पहले अस्तित्व में आया इस्लाम, दो हजार साल पहले अस्तित्व में आया ईसाई धर्म और लाखों साल पहले से चला आ रहा सनातन धर्म में काँग्रेस अंतर नहीं कर पायी। यही द्विविधा आज भी बनी हुयी है। रिलीजन धर्म से एक दम भिन्न है। हिन्दुत्व व सनातन धर्म ईसाई-मुस्लिम मजहबों से अलग है और वह विश्व का भला करने में सक्षम है। यदि एक दूसरे को मनुष्य के रूप में, मानव-जाति के रूप में और देशभक्त भारत वासी के रूप में देखें तो वे एक दूसरे को बढ़-चढ़ कर प्यार व सम्मान दे सकते हैं। यही भारतीयता है, यही इन्सानियत है। सन् 2002 में गुजरात, सन् 1990 में कश्मीर, सन् 2013 में किश्तवाड़ (जम्मू-कश्मीर) दंगों में हिन्दुओं का कत्ले आम हुआ लेकिन सेकुलरों की बिरादरी की जबान नहीं खुली। क्या ऐसे लोगों को हिन्दुओं के दर्द से कोई सरोकार रहा है या भाविष्य में रहेगा?

सुभाषितानि

शतेषु जायते शूरः सहस्रेषु च पण्डितः।

वक्ता दशसहस्रेषु दाता भवति वा न वा।।

अर्थ :- सौ लोगों में एक शूरवीर होता है, हजार लोगों में एक विद्वान होता है, दस हजार लोगों में एक अच्छा वक्ता होता है वही लाखों में बस एक ही दानी होता है।

धर्म को मजहब न बनाएं

— शंकर शरण

उज्जैन के महाकाल मंदिर में स्थापित शिवलिंग के साथ पंचकर्म नहीं होगा। उस पर साधारण नहीं, बल्कि आर्यों का पानी चढ़ाया जाएगा। ऐसे निर्णय विचित्र है। शिवलिंग, मूर्ति या प्रतिमाएं केवल प्रतीक हैं, धर्म चेतना की ओर बढ़ने की सबसे साधारण चीज। उसी को अंतिम मानकर माथापच्ची करना निपट अज्ञान है जिसे यह भी ध्यान नहीं कि ऐसी प्रतिमाएं, प्रतीक तो हिंदू लोग हर साल बनाते और विसर्जित करते रहते हैं। यदि उसी में धर्म निहित रहता तो दुर्गा या गणपति को विसर्जित क्यों करते? ऐसा अज्ञान हमारे देश में धर्म-विहीन शिक्षा के कारण है। वैसे निर्णय धर्म और रिलीजन की भिन्न धारणाओं के घालमेल का भी कुप्रभाव है जिसे पश्चिमी लोग रिलीजन मानते हैं उसकी लोग रिलीजन मानते हैं, उसकी सीख केवल विश्वास, अंधविश्वास और कुछ बाह्याचार मात्र है। रिलीजन वाली समझ यह है कि किसी व्यक्ति का आचरण कैसा भी हो, यदि वह एक विशेष ईश्वर उसके विशेष दूत पैगंबर और विशेष पवित्र किताब पर विश्वास रखता है तो वह अमुक रिलीजन का हुआ। बहुत से लोग उसी प्रवृत्ति को हिंदू धर्म पर थोप रहे हैं जब कि हिन्दू धर्म में मंदिर जाना, प्रतिमा-पूजन करना आदि असली बात नहीं है। इसीलिए यह सब करते हुए यदि कोई दूषित आचरण में लिप्त हो तो उसे अधर्मी, पापी त्याज्य, दंडनीय माना जाना है। हिंदुओं के बाह्य धर्माचार को रिलीजियस फेथ में नहीं बदलना चाहिए। नहीं तो धर्म का ह्रास होता जाएगा चाहे मजहबी किस्म का अंधविश्वास बढ़ जाए। उपनिषदों से लेकर स्वामी विवेकानंद तक ने यही और केवल यही शिक्षा दी है। सच्चिदानंद वात्स्यायन अज्ञेय ने इस पर लिखा था— 'जिसको हम हिंदू धर्म कहते हैं उसमें जो बुनियादी तत्व है वह यह है कि इसमें इस बात का महत्व नहीं है कि आप क्या मानते हैं, बल्कि आप

समाज में कैसे रहते हैं, इसका महत्व है।' धर्म आचरण से जुड़ा है जबकि रिलीजन विश्वास से। धर्म कहता है आपके विश्वास कुछ भी हों, आपका आचरण नीति, मर्यादा, विवेक के अनुरूप होना चाहिए। इसीलिए यहां ऐसी अवधारणाएं हैं जिनके लिए पश्चिमी भाषाओं में कोई शब्द नहीं। जैसे राज-धर्म क्षात्र-धर्म, आदि। जबकि आचरण से परे यदि आप कुछ निश्चित बातों पर

मोमबत्ती से किया जाता है जबकि पहले से जलती मोमबत्ती से दीप-प्रज्वल करना एक मतिहीन अनुष्ठान है। इसी प्रकार यज्ञोपवीत, विवाह जैसे आध्यात्मिक अवसर पर अधिकांश का ध्यान संस्कार पर नहीं, बल्कि उनके फोटो खींचने, खिचवाने पर रहता है। मानो विवाह किसी थिएटर का ड्रेस-रिहर्सल है जिसमें सप्तपदी को भी फोटो लेने के लिए रोका जाता है। वर माला की

विकृत हो रही है। समाज में बढ़ता भ्रष्टाचार, पापाचार, आदि उसी का का कुफल है। इसी कारण धर्म अरक्षित हो रहा है, क्योंकि यह किसी मत-विश्वास पर नहीं, बल्कि सृष्टि मात्र के साथ संबंध पर आधारित है। यही हिंदूधर्म की अद्वितीयता और उसकी सामाजिक दुर्बलता, राजनीतिक कठिनाइयों का आधार भी है। रिलीजन वाले मतवाद अपने आस-पास बाड़ा बनाते हैं। जो उसके भीतर हैं वे अपने हैं और बाकी सब 'गैर' और प्रायः शत्रु। हिंदू धर्म ऐसे बाड़े नहीं बनाता और किसी को गैर नहीं मानता। दुनिया पर कब्जे की नीति रखने वाले, संगठित रिलीजनों को हिंदू धर्म के बराबर कह कर पिछले सौ साल से भारत को विखंडन के लिए खुला छोड़ दिया गया है। इसकी चिंता हमारे माननीय कभी नहीं करते, जबकि शिवलिंग पर आरजो का पानी चढ़ाने का निर्देश देते हैं। उनके लिए शिवलिंग और ताजमहल में कोई अंतर नहीं है।

उज्जैन के महाकाल मंदिर में स्थापित शिवलिंग के साथ पंचकर्म नहीं होगा। उस पर साधारण नहीं, बल्कि आर्यों का पानी चढ़ाया जाएगा।

विश्वास करते हैं तो आप ईसाई या मुस्लिम रिलीजन वाले हुए। इसीलिए उनके बीच रिलीजन को 'फेथ' भी कहा जाता है। वहीं फेथ ही रिलीजन है। अतः उज्जैन में स्थापित शिवलिंग को फेथ वाली दृष्टि से न देखें। सोमनाथ में मुस्लिम आकांताओं ने दर्जनों बार शिवलिंग तोड़कर नष्ट किया, किंतु वहां पुनः पुनः नया शिवलिंग स्थापित कर प्राण-प्रतिष्ठा की गई। अतएव हिंदू पूजा-अर्चना को हृदय और मानस से धर्म-पालन का साधन समझना चाहिए, न कि किसी प्रतीक में अंधविश्वास मात्र। शिवलिंग की वैसी रक्षा करना हास्यास्पद है, जैसे किसी मनुष्य के शरीर को हर हाल में मरने से बचाने की चिंता हो। यह हिंदू धर्म नहीं है। यह तो धर्म को रिलीजन वाली फेथ दृष्टि में बांध देना हुआ। वस्तुतः अंग्रेजी शिक्षा और विकृत सेक्युलरिज्म के सम्मिलित दुष्प्रभाव से हम धर्म से दूर हो रहे हैं। इसके बदले धर्म-हीन होकर फेथ-रिलीजन वाले अर्थ में अंध-विश्वास बन रहे हैं। तरह-तरह की धोखाधड़ी पापाचार, आडंबर में लिप्त रहते हुए भी पूजा-पाठ जैसी प्रवृत्ति यही चीज है। यह विकृति हमारे सामाजिक व्यवहार में भी दिखाई पड़ती है। प्रायः कार्यक्रमों में दीप-प्रज्वलन

आवृत्ति कराई जाती है। वर माला की आवृत्ति कराई जाती है, क्योंकि फोटो ठीक नहीं आया। वात्स्यायन जी ने इस प्रवृत्ति को 'हिन्दू वर्ल्युरीटी' कहा था। उन्होंने मंदिरों के इर्द-गिर्द आम गंदगी में भी यही देखा था। मंदिरों में चबूतरे आदि पर चंदा देने वालों के नाम खुदवाना, कन्याकुमारी समुद्र में स्वामी विवेकानंद स्मृति में बड़ी प्रतिमा और बिल्डिंग बना देना भी उन्हें फूहड़ लगा था। जिससे लोग सामने के विराट को नहीं देखते, केवल जिसने वह विराट देखा था उसकी प्रतिमा बनाकर पूजने बैठ जाते हैं। वह प्रतिमा ही फिर उनके और विराट के बीच दीवार बन जाती है। यह हिंदू समाज में धर्म का मर्म खाने, और रिलीजियस फेथ वाली आदतें अपनाने के उदाहरण हैं। यहां सेक्युलरिज्म भी रिलीजियस तटस्थता के नाम पर आचरण वाले धर्म से ही दुराव रखता है। अर्थात् दो बेमेल चीजों को एक मानकर समान दूरी बरतता है। यही हमारे बच्चों, युवाओं को पीढ़ी-दर-पीढ़ी सिखा रहा है। तब परिणाम 'अंधविश्वास' के सिवाय क्या होगा? यह 'धार्मिकता' नहीं, जो बढ़ रही है। धर्म से दूरी बढ़ने को धार्मिकता कहना एक भ्रम को प्रोत्साहन है। हमारा धर्म यानी धर्म की पहचान हमारी शिक्षा

एक मंदिर जो साल में मात्र चार दिन खुलता है।

अपने देश में एक अनोखा मंदिर ऐसा भी है जो वर्ष में केवल चार दिन धनतेरस के अवसर पर खुलता है। यह मंदिर शिव-शंकर की नगरी काशी में है तथा अन्नपूर्णा माता की दो प्रतिमाएं हैं, एक सोने की तथा एक पीतल की हैं। माता के पीतल के विग्रह के दर्शन तो प्रतिदिन होते हैं किन्तु सोने के विग्रह के दर्शन केवल धनतेरस से गोवर्धन पूजा तक चार दिन होते हैं। इस बार धनतेरस 17 अक्टूबर को थी। अतः माता के दर्शनों के लिये एक दिन से पहले से ही कोई दो कि.मी. लम्बी लाइन लग गई। धनतेरस को जब स्वर्ण - विग्रह वाला भाग खोला गया तो श्रद्धालुओं में माता का खजाना भी बांटा गया। खजाने में वर्ष भर एकत्र हुई सामग्री के अतिविकृत नये धान की बालियों भी होती हैं।

महामना पं. मदनमोहन मालवीय

“मरि जाऊब मॉंगू नही अपने हित केकाज पर कारज हित मॉंगिबो मोहिन आवत लाज तथा रक्षा होवे देश की, बढ़े जाति का मान देश पूर्ण गौरव लहै, जय भारत सन्तान” महामना पंडित मदन मोहन मालवीय का व्यक्तित्व अपने समय के उन श्रेष्ठ जनों में से है जो अपने जीवन, विचारों और कृतिक की छाप समसामयिक समाज पर भलीभाँति अंकित कर गये और राष्ट्र को जिन पर अपूर्व गर्व है। गत दिनों काशी हिन्दू विश्व विद्यालय में घटी घटना पूरी तरह से वामपंथियों द्वारा प्रायोजित रही। सेक्युलर से मीडिया ने जिस तरह के कुतर्क गढ़े, उन सबसे महामना के मंदिर की गरिमा को ठेस पहुँची है। जब जे.एन.यू में आये दिन अराष्ट्रीय धटनायें घटती रहती हैं, तब यही सेकुलर मीडिया चुप्पी साध जाता है। यह उच्च परम्परा वाला देश के अन्य विश्वविद्यालयों जैसा नहीं है। यह एक उच्च श्रेणी के साधुप्रकृति वाले व्यक्ति की कठोर तपस्या का सुफल है, जिसकी आधार शिला रखने के लिये महामना ने भिक्षा माँगने में भी संकोच नहीं किया। उस तपस्या का अनुमान वही व्यक्ति लगा सकता है, जो उच्च स्तर का व्यक्ति हो। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय निर्माण और संरचना के साथ ही वे देश और समाज के विकास की बहुविध गतिविधियों में भी जीवन भर सक्रिय रहे। 1918

और 1925 में वे कॉंग्रेस के अध्यक्ष चुने गये हिन्दी सेवा और गौरक्षा उनके प्रमुख कार्यक्रम रहे हैं। सन् 1928 में प्रयाग में अ.भा. गौरक्षा सम्मेलन की उन्होंने अध्यक्षता की थी। काशी विश्वविद्यालय



मालवीय जी की अटूट निष्ठा सर्वजन हिताय कामना का श्रेष्ठ प्रमाण है। उनके जैसे सात्विक भिक्षुक विरले ही होते हैं। उन्होंने विश्वविद्यालय के लिये लगभग एक करोड़ चौतीस लाख रूपयों का दान प्राप्त किया था जिसमें भारत के राजा से लेकर रंक्त तक का योगदान शामिल था। देश के अत्यन्त महत्वपूर्ण समाचार पत्र ‘हिन्दोस्तान’ के संपादक के पद पर रहते हुये जो गौरवपूर्ण कार्य किये, वे आज भी प्रेरणादायक बने हुये हैं। हिन्दी पत्रकारिता का वह

समय उज्ज्वल अतीत है। मालवीय जी ने पहली बार इस पत्र के माध्यम से लेखकों के पारिश्रमिक के सवाल को उठाया था। उनकी पहल पर ही पहली बार ग्रामीण क्षेत्रों की खबरों को

प्रकाशित करने का सिल-सिला प्रारंभ हुआ था। मालवीय जी उस दौर के नायक हैं। स्वतंत्रता सेनानी हैं, श्रेष्ठ वक्ता, लेखक और सामाजिक कार्यकर्ता हैं। पं. मदनमोहन मालवीय का जन्म 25 दिसम्बर 1861 को अहियापुर, प्रयाग चतुर्वेदी पंडित ब्रजनाथ मालवीय के यहाँ हुआ था। सन् 1884 में उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय से बी.ए और 1891 में बकालत की परीक्षा उत्तीर्ण की। सन् 1886 के कॉंग्रेस अधिवेशन में अत्यन्त प्रभावशाली भाषण कला

— डॉ. किशन कछवाहा
की प्रशंसा कॉंग्रेस के संस्थापक ए.ओ.हयूम, सभाध्यक्ष दादाभाई नौरोजी तथा सुरेन्द्रनाथ बैनजी आदि नेताओं द्वारा की गई। उनकी विद्वत्ता से प्रभावित हो कर कालाकॉर के राजा रमणपाल सिंह ने अपने पत्र ‘हिन्दूस्तान’ का सम्पादक बनाया। आज जब हिन्दी पत्रकारिता पर संपादक नाम की संस्था के प्रभावहीन हो जाने का खतरा मंडरा रहा है, स्वभाषा के स्थान पर ‘हिग्लिश’ को स्थापित करने की कोशिशों पर जोर है। संपादक स्वयं का स्वाभिमान भूलकर बाजार और कारपोरेट के पुरजे की तरह संचालित हो रहे हैं— ऐसे कठिन समय में मालवीय जी की स्मृति बहुत स्वाभाविक और मार्मिक हो उठती है। वे राष्ट्रवादी पत्रकारिता के ध्वजवाहक थे। अपनी संपादकीय नीति के मामले में उन्होंने किसी प्रकार का समझौता स्वीकार नहीं किया। वे इस मामले में इतने आग्रही थे कि अपनी नौकरी भी उन्होंने राजा रामपाल सिंह द्वारा नशे की हालत में बुलाने के कारण छोड़ दी थी। संपादक के स्वाभिमान का यह उदाहरण आज के दौर में दुर्लभ है। 13 नवम्बर सन् 1946 को उन्होंने इस धरा से विदा ले ली। उनके विचार और उनके द्वारा किये गये कार्य आने वाली पीढ़ी को दिशा देते रहेंगे।

राजनीतिक दलों में आन्तरिक लोकतंत्र

एक बहुप्रचलित कहावत है कि ‘फूस का तापना और उधार का खाना’ कभी फलदायी नहीं हुआ। उल्टे यह अकल्याणकारी ही सिद्ध होता है। इस देश की राजनीति की यह विडम्बना रही है। स्वातंत्रता प्राप्त होते ही सत्ताधारी राजनेताओं ने उधार की लोकतांत्रिक — प्रणाली घोषित कर उसे पूर्ण मनोयोग से अपना लिया, बिना सोचे— विचारे कि भारत जैसे

खण्डित हो चुके शेष बचे विशाल भू-भाग के लिये इंग्लैण्ड की यह वेस्टमिन्टर प्रणाली कितनी असंगत या विसंगत हैं। इस देश में अनेक जातियाँ—उपजातियाँ, भाषायें—बोलियाँ, रीति—रिवाज, क्षेत्र, वर्ग, उपवर्ग आदि हैं और इन सबको एक झण्डे से हॉकना संभव नहीं है। “सभी धान बाइस पंसेरी” तौल देना भला किस बुद्धिमत्ता का नाम होगा। वैसे तो अंग्रेजो ने

इस निर्वाचन— प्रणाली को चूँकि काँग्रेस को बहुत पहले से ही विभिन्न राजनीतिक सुधारों के नाम पर डालना प्रारम्भ कर दिया था और जो सबसे बड़ा चूँकि 1935 के अधिनियम के अंतर्गत डाला गया, उसके लोभ में तत्कालीन नेतृत्व एक ऐसे जाल में फस गया और वह जाल उन्हें 1936 के चुनाव में विभिन्न प्रान्तों में सत्ता—सुख का ऐसा स्वाद चखा गया कि उस

सत्ता सुख की स्थायी प्राप्ति हेतु उसने 1947 में देश का विभाजन तक स्वीकार करने में कोई आगा—पीछा नहीं सोचा। भोग विलास की इस लालसा में ही संविधान बनाये जाते हैं। समय बिना सोचे विचारे अंग्रेजों की यह प्रणाली निर्लज्जतापूर्वक देश पर लाद दी गयी। अपने प्राचीन वाड्.

मय में जो अनेक प्रणालिया उल्लिखित हैं, रामायण, महाभारत ही नहीं, महामति चाणक्य को ही यद्यपि पढ़ लिया होता तो भी आज देश की ऐसी दुर्दशा न होती। चाणक्य भी न सही डॉ. काशीप्रसाद जायसवाल लिखित 'हिन्दु पॉलिटि' (जिसका हिन्दी अनुवाद 'हिन्दु राजशास्त्र' भी उपलब्ध था।) को ही पढ़ लिया, तो भी देश को ऐसे दुर्दिन न देखने पड़ते। उधार खाते की इसी अंग्रेजी प्रणाली के अधीन निर्वाचन-प्रणाली भी उनकी ही ली गयी, जिसकी 'दिन-दूनी रात चौगुनी' गति ने पूरे देश में घोर विघटन ही नहीं, घोर आतंकवाद, खुले राजद्रोह को विभिन्न राजनेताओं और उसके दलों द्वारा संरक्षण, सम्पोषण वोट बैंक की कुत्सित राजनीति के अंतर्गत प्राप्त हो गया है। हर स्तर पर भ्रष्टाचार तो युगधर्म ही बन चुका है।

सुझाव जिन पर विचार नहीं हुआ — लेकिन करे क्या करे ? इस प्रणाली में ही जब देश का लोकतंत्र चलाया जा रहा है, तो अन्य प्रणाली के बारे में कौन सोचे ? कभी भी लालकृष्ण आडवानी ने समानुपातिक निर्वाचन — प्रणाली अपनाये जाने की बात उठायी थी, कुछ बहस भी इसको लेकर चली थी, पर तब भारतीय जनसंघ की इतनी शक्ति नहीं हो पायी थी कि इस पर देश की राजनीतिक और प्रबुद्ध बुद्धि गम्भीरता से विचार करती। विशेष आपत्ति किसी एक दल के पूर्ण बहुमत प्राप्त न कर पाने की स्थिति में क्या होगा, इस बिन्दु पर केन्द्रित कर दी गयी। फिर श्री बसंत साठे ने राष्ट्रपति प्रणाली अपनाने की चर्चा प्रारम्भ की, तो इसे श्री मति इंदिरा गाँधी को अधिनायक बनाने की कूट-योजना का अंग बताकर कांग्रेस-विरोधी दलों ने खारिज कर दिया। तब से लेकर आज तक इस ओर किसी ने बहस छेड़ने की नहीं सोची। अब तो केन्द्र से लेकर प्रदेशों तक में गठबंधनों की साझा सरकारें हैं और इनकी उठा-पटक के कारण देशघाती तत्वों के पौ-बारह हो

रहे हैं, तथापि प्रणालीगत दोषों की ओर दृष्टिपात करने तक की फुरसत किसी के पास नहीं है। कांग्रेस की कहानी —

एक बात इस प्रणाली के सम्बंध में और भी विचारणीय है कि मान्यता — प्राप्त राजनीतिक दलों में भी लोकतंत्र की इस प्रणाली का दूर-दूर तक पता नहीं है। तथाकथित कार्यकर्त्तानिष्ठ राजनीतिक दलों में भी इसका अभाव— सा ही दृष्टिगोचर होता है। फिर वह चाहे कम्युनिस्ट हो या भारतीय जनता पार्टी इनमें भी देखने भर को ही लोकतांत्रिकता हैं। कम्युनिस्ट पार्टियों का तो लोकतंत्र में अपने जन्म काल से ही कभी विश्वास नहीं रहा, परन्तु भारतीय जनसंघ और अब उसके 1980 संस्करण भारतीय जनता पार्टी में किसी सीमा तक आंतरिक तौर पर लोकतंत्र के दर्शन होते हैं। ब्रिटिश लोकतन्त्रीय प्रणाली में राजनीतिक दलों के आन्तरिक लोकतंत्र का महत्वपूर्ण स्थान है, परन्तु अपने देश में दलों के इस आंतरिक लोकतंत्र की ओर प्रायः दुर्लक्ष्य ही किया गया है। इण्डियन नेशनल कांग्रेस में आंतरिक लोकतंत्र प्रारम्भ से ही नहीं रहा, और उसका वीभत्स रूप 1907 के सूरत अधिवेशन में परस्पर मारपीट के रूप में सामने आया, जो उसने नरम और गरम दल में विभक्त कर दिया गया। बैरिस्टर मोहनदास करमचंद गांधी के कांग्रेस में पदार्पण और लोकमान्य बालगंगाधर तिलक के निधन के उपरान्त उनका शीर्ष नेता के रूप में उद्भव होने के उपरान्त यह तथाकथित इण्डियन नेशनल कांग्रेस आन्तरिक लोकतंत्र की पुरोधा तो प्रत्यक्षतः बनी पर वस्तुतः बैरिस्टर गान्धी के "महात्मा गांधी" में रूपांतरण होते ही तूती हमेशा उन्हीं की बोलती रही। यहां तक की सुभाष चंद्र बोस के दुबारा कांग्रेस अध्यक्ष (तब उसे राष्ट्रपति कहा जाता था) चुने जाते ही उनके प्रतिस्पर्द्धी डॉ. पट्टाभि सीतारमय्या की पराजय को अपनी निजी पराजय घोषित करते ही गांधी भक्तों ने सुभाषचंद्र बोस की राह में ऐसे काटे बिछाये ऐसे काटे गाड़े

कि उन्हें कांग्रेस से त्याग पत्र देकर "फारवर्ड ब्लाक" बनाना पड़ा और अन्ततोगत्वा देश भी छोड़ देना पड़ा। गांधी जी की छद्म लोकतांत्रिकता उनके अंतःकरण में बैठे 'डिक्टेटर' को कभी प्रभावित नहीं कर सकी। सरदार वल्लभ भाई पटेल को तीन बार कांग्रेस चुने जाने के बाद भी गांधी के दबाव में पीछे हट जाना पड़ा क्योंकि गांधी जी के सर्वाधि प्रिय मात्र जवाहर लाल नेहरू ठहरे। 1946 में पटेल को धकियाकर नेहरू को कांग्रेस का अध्यक्ष बनाकर और इस नाते सत्ता हस्तांतरण में नेहरू के हाथों में देश की बागडोर प्रधानमंत्री के रूप में जाने देने के कूट गांधी प्रयत्न ने ही जो सर्वोपरि भूमिका निभायी है, वह देश विभाजन और उससे उत्पन्न हुई तथा अब तक उत्पन्न होते जा रही है विषम समस्याओं ने इस सनातन राष्ट्र की एकता, अखण्डता एवं सम्प्रभुता को जैसी भीषण क्षति पहुँचायी है, वह सर्वविदित है। बरुआ का भाट राग —

भले ही गांधी जी या नेहरू जी के इस विचित्र व्यवहार पर संदेह को आपत्तिजनक माने: परन्तु वस्तुस्थिति डंके की चोट पर जो घोषणा करती है, इतिहास के पन्नों से जो तथ्य उजागर होते हैं, जो साक्ष्य प्रमाण देते हैं, उनसे जो निष्कर्ष निकलते हैं, उनसे इन्कार कर सकना सहज संभव नहीं। सरदार पटेल की असामयिक मृत्यु (15 दिसम्बर 1950) के पश्चात अपने विधिवत निर्वाचित अध्यक्ष राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन को हटाकर नेहरू जी स्वयं कांग्रेस अध्यक्ष बन बैठे और फिर 1959 में जिस प्रकार अपनी पुत्री श्री मति इंदिरा गांधी को कांग्रेस अध्यक्ष नामित कर दिया, उसने तो कांग्रेस में दिखावे के लिये भी आंतरिक लोकतंत्र नहीं बचने दिया। रही—सही कसर सन् 1967 के आम चुनाव के बाद 1969 में कांग्रेस का कथित विभाजन कराकर नेहरू की लाडली पुत्री श्री मति इंदिरा गांधी ने पूरी कर दी जब उसने कांग्रेस की संगठनात्मक संरचना को एक प्रकार से पलीता लगाते हुये इस

देश में कुख्यात आपातकाल और 'इन्दिरा इज इण्डिया एण्ड इंडिया इज इन्दिरा' का भाट राग तत्कालीन कांग्रेसअध्यक्ष देवकांत बरुआ के मुख से उच्चारित करा दिया। तब से लेकर अब तक तथाकथित इण्डियन नेशनल कांग्रेस में अधिनायकवाद का सबसे बड़ा भोंडा और धिनौना रूप उस क्षण दिखायी दिया जब बेचारे सीताराम केसरी को धकियाकर 'चील झपट्टा' शैली में सोनिया गांधी ने कांग्रेस अध्यक्ष पद उनसे बालात् छीन लिया। कांग्रेस में श्री नारायण दत्त तिवारी से 'तिवारी कांग्रेस' बनवाकर जो षडयंत्र इस हेतु अर्जुन सिंह, मोहसिना किदवई, माखनलाल फोतेदार के माध्यम से रचा गया था, उसका भाण्डा भी चौराहे पर स्वतः फूट गया। साथ ही सोनिया कांग्रेस के क्रिया-कलापों से यह भी लगातार स्पष्ट होता गया, होता जा रहा है, कि इण्डियन नेशनल कांग्रेस जो अपने जन्म से ही 'एण्टी इण्डियन' 'एण्टी नेशनल' थी, वह खुलकर 'न इण्डियन, न नेशनल' तो बन ही चुकी है। देश घातकी, राष्ट्रघातिनी राजनीति की पूतना का रूप भी धारण कर चुकी है। अन्य दलों के केवल भारतीय जनता पार्टी ही एक मात्र ऐसी कार्यकर्तानिष्ठ पार्टी रह जाती है जिसमें किसी सीमा तक आंतरिक लोकतंत्र की झलक स्पष्ट दिखायी देती है। अन्य सभी राजनीतिक दलों में आंतरिक या बाह्य किसी प्रकार के लोकतंत्र का लेशमात्र भी अस्तित्व नहीं है। सभी व्यक्ति निष्ठ हैं। एक व्यक्ति की तानाशाही पर अधिष्ठित है ऐसे दल उस व्यक्ति विशेष का तिरोधान होते ही स्वतः तिरोहित हो जाते हैं। चौधरी चरण सिंह, हेमवती नन्दन बहुगुणा, जगजीवनराम आदि के दलों का इतिहास तो अभी कल का है। मुलायम सिंह, लालू यादवों, रामविलास पासवान, शरद पवारों, मायावतियों, या उमा भारतीयों के दल कब मेनका गांधी के संजय गांधी विचार मंच या वी.पी.सिंह के जन मोर्चा की गति को प्राप्त होते हैं, यह बहुत दूर की बात नहीं